भगवान के धाम में

स्वामी डा. विश्वामित्र

Shree Ram Sharnam, International Spiritual Center
www.shreeramsharnam.org

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
1. प्रभु राम से विनय–वार्ता	1
2. भगवन्नाम – जप के सुसंस्कार	8
3. प्रभु का नामावतार	15
4. वास्तविक गुरु–दक्षिणा	30

प्रभु राम से विनय–वार्ता

स्वामी डा. विश्वामित्र

(गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित ''कल्याण जून २००४)

सर्वशक्तिमते परमात्मने श्री रामाय नमः
परमात्मा श्री राम, परम–सत्य, प्रकाश–रुप,
परम ज्ञानानन्द स्वरुप, सर्वशक्तिमान,
एकैवाद्वितीय परमेश्वर, परम पुरुष,
दयालु, देवाधिदेव तुझको बार बार
नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार।।

हे सच्चिदानन्द–घन परमात्मा ! हे अविनाशी परमात्मा! सर्वअन्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वविद्यमान, अतिशय दयालु कृपालु, करुणानिधि प्रभु, तेरे बच्चे तेरे दरबार में बैठे हैं। हम सब का दण्डवत प्रणाम स्वीकार करो। दया करो, कृपा करो हमारे ऊपर। सत्य है मेरे राम ! तुझे मुंह दिखाने योग्य नहीं, भीतर

स्वामी डॉ. श्री विश्वामित्र

(जन्म–15 मार्च सन् 1940) परम पूजनीय श्री प्रेम जी महाराज के अन्तरंग शिष्य डॉ. श्री विश्वामित्र जी महाराज ने ऑल इंडिया इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साईंसिज़, नई दिल्ली में 22 वर्षों तक गौरवशाली सेवा की। आप एशिया के अकेले "ऑक्यूलर माइक्रोबायोलोजिस्ट" के रुप में विख्यात हुए। आपकी वाणी में विलक्षण तेज, ओज एवं सत्य का प्रभाव है। आपके प्रवचन एवं भजन कीर्तन–गायन से सभी श्रोतागण मुग्ध हो जाते हैं। आपके तप का प्रभाव आपके तेजोमय मुख–मण्डल से स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।

आप अपने आवागमन एवं भोजन का पूरा व्यय स्वयं वहन किया करते हैं, तथा किसी से कोई भेंट स्वीकार नहीं करते।

आप राम–नाम को जीवन का एक मात्र उद्देश्य बनाते हुए, पूज्य श्री स्वामी जी महाराज द्वारा स्थापित आदर्श परम्पराओं का दृढ़तापूर्वक निर्वहन करते हुए अपने तेजोमयी प्रभा–मण्डल से समूचे भारत एवं विश्व को प्रकाशित कर रहे हैं। आप दर्शन मात्र से ही सबको आनन्दित एवं प्रफुल्लित कर देते हैं।

ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व के धनी हैं आप।

झांक कर देखें, तेरे सामने आने के योग्य नहीं। साहस करके परमात्मा तेरे दरबार में आये हैं प्रभु, हमारा बारम्बार प्रणाम स्वीकार करो, स्वीकार करो।

आपकी महिमा अपरंपार है प्रभु। जो असम्भव को सम्भव करदे वही 'राम' है, वही परमात्मा है। परमेश्वर सोचता हूं, ऐसा कार्यक्रम जो अभी यहां शिकागो में करवा रहे हो, हरिद्वार जैसी पुण्य भूमि पर, मातेश्वरी गंगा के किनारे होता है। कुछ और स्थानों पर भी होता है। आज परमेश्वर यहां करवा रहे हो। बात यही हुई न, जो जहां चाहो करवा सकते हो। जहां शुरु हो जाता है, वही स्थान तीर्थ स्थान हो जाता है, वही धरती धन्य हो जाती है। तेरी कृपा अपरंपार है परमात्मा, तेरी महिमा अपरंपार है, अवर्णनीय है, अतुलनीय है। हम सब आपके ऋणी हैं प्रभु।

आपका दासनुदास, परमात्मा ! आपके हजूर में कुछ एक विनतियां लेकर आया है, इसी आशा से कि संत महात्मा कहते है, "जो भी इस दरबार में आता है, द्वार पर दस्तक देता है, मेरे राम उसकी झोली भर कर भेजते हैं।" कभी कोई, खाली नहीं तेरे द्वार से गया। हमारी खाली झोली भी खाली नहीं जायेगी। भर कर भेजना तेरा स्वभाव है परमात्मा। कहते हैं तू दे दे के नहीं थकता, हम ले ले कर तुझे बिसराते जाते हैं। परमात्मा ! नाशुक्रे हैं, हम। तेरा धन्यवाद भी ठीक ढंग से नहीं करना जानते। लेकिन हे राम! इतने दिनों से जो यहां कार्यक्रम करवाये हैं, उन सबके लिये, हमारा रोम रोम आपके प्रति कृतज्ञ है।

भिखारी हैं परमात्मा ! तेरे दरबार के। भीख मांगने के

लिये आये हैं। मेरे राम, प्रारब्ध के अनुसार बहुत कुछ मिल रहा है। तू प्रारब्ध भी बदल सकता है। प्रारब्ध में जो लिखा है उसे काट भी सकता है। प्रारब्ध के साथ साथ, तेरी अनुकम्पा है, तेरी कृपा है, सब दिख रहा है। धन की कोई कमी नहीं, किसी चीज़ की कोई कमी नहीं। मेरे जैसा व्यक्ति तो, ये सब कुछ देख कर यही कहेगा, "हे परमात्मा! हम फिर भी गरीब हैं।" यदि धन से अमीरी होती परमेश्वर, संसार की दृष्टि में तो हैं, लेकिन तेरी दृष्टि में तो बिल्कुल गरीब हैं, दरिद्री हैं। डालर होते हुए भी, रुपये होते हुए भी, निर्धन हैं। धनी तो वही है, परमात्मा ! जिसने राम धन कमाया है, संतोष धन कमाया है, जिसने सत्कर्म की पूंजी इकट्ठी करी है, वही है वास्तविक धनवान्। हम तो दिखावे के धनवान् हैं। अधिक खाने वाले, अधिक पीने वाले, अधिक सोने वाले, अधिक बोलने वाले, अधिक सोचने वाले। जीवन में, कोई नियम तो परमात्मा है नहीं। एक ही नियम है —सुबह घर से निकलना, रात को थके मांदे घर पर आना। घर से खा कर जाना, घर आकर खा लेना। आकर सो जाना, यही हमारा जीवन है। काश ! इससे तू संतुष्ट हो जाता। लोक तो ठीक चल रहा है परमात्मा ! लेकिन परलोक का तो कोई ख्याल नहीं। यहां तो हमें थोड़े दिन ही रहना है, वास्तव में तो अपने घर ही जाना है, जो दूर है, वहीं जाना है। उसकी अभी कोई चिन्ता नहीं परमात्मा। कोई भेजना, संत महात्मा, जो कुछ बता सके, तेरी बातों का बोध करवा सके 'कहां भटकते फिरते हो ? ये सब बड़े आलीशान मकान, इतना सब कुछ, सुख सुविधा मैंने इस

राम राम

लिये प्रदान की हुई है कि आप किसी बात का अभाव महसूस न करके, मेरे नाम का, अधिक से अधिक जाप करो। वह सब कुछ तो, ले रहे हो मेरे से, पर मुझे ही भूल रहे हो। कैसे हो आप?'' यह परमात्मा का उलाहना है। ये परमात्मा की शिकायत है हमारे प्रति। धन्य हैं वे, जो ये सब कुछ होते हुए भी, हर प्रकार की सुख सुविधा होते हुए भी, आवश्यकता से अधिक सुख सुविधा होते हुए भी, ईश्वर का नाम जप रहे हैं, उसके पतित पावन नाम का आराधन कर रहे हैं। परमात्मा ! यह दास, उन सबके श्री चरणों में मस्तक झुकाता है, जो नाम की कमाई कर रहे हैं, यह उनका भी दास और तेरा भी दास।

भीख मांगता हूं सबके लिये। मेरे परमात्मा ! सदबुद्धि दे। ये नशे उतार दे हमारे। ये शराब के नशे से बहुत बुरे है। भयानक नशा, यश–मान का नशा, उत्कृष्टता का नशा, **superiority** का नशा। मेरा मकान उससे बड़ा, मेरे पास उससे अधिक कारें हैं। ये नशे बड़े बरबाद करने वाले हैं। मेरे राम! तेरे अतिरिक्त, ये काम, कोई भी नहीं कर सकता। बाकी चीज़ें तो बाज़ार से मिल जाती है, दुकान में मिल जाती हैं, पर ये सब कुछ तेरे द्वार से ही मिलता है। अन्यथा नहीं। किसी संत महात्मा की चरणों की धूलि माथे पर लेने से ही ये सब कुछ होगा, नहीं तो नहीं। तेरी भक्ति, बाज़ार से नहीं मिलती। यह वैराग्य, बाज़ार से नहीं मिलता। भगवत्प्रेम, बाज़ार से नहीं मिलता। परमात्मा ! इन सब का दाता तू। तुझ दाता–शिरामणि से भीख मांगते हैं। आज के बाद, तेरा नाम कभी न भूलें। तुझे कभी न भूलें। जिस प्रकार तू हमें याद करता है परमात्मा ! उससे अधिक तुझे याद

करना हमारा परम कर्त्तव्य है। हम तेरे ऊपर कोई एहसान नहीं कर रहे। हमारी भलाई इसी में है और तू हमारा भला ही सोचता है। तू हमारे भले के अतिरिक्त, कुछ सोच ही नहीं सकता। तुझे क्या पड़ी है, तुझे कोई याद करे न करे। तुझे क्या फर्क पड़ता है, यदि तू चाहता है, हम तुझे याद करें तो परमात्मा तुझ जैसा उपकारी कौन? कोई नहीं। तभी कहता हूं न बार–बार, मेरे राम ! कि तेरा दिया–किया कभी नहीं चुका सकते। परम उपकारी है परमात्मा तू। मां बाप भी नहीं ऐसे निःस्वार्थी, उनको भी कुछ न कुछ चाहिये होता है। तू ही है एक, जो हमारा भला हित चाहता है, कल्याण चाहता है और उसके बदले में कुछ नहीं चाहता।

धन्य है तू मेरे राम। कृपा कर हमारे ऊपर। भक्ति करनी नहीं आती, प्रेम करना नहीं आता, तेरा नाम जपना नहीं आता। दूसरों को दुःख ही दिये हैं जिन्दगी में। दुःखों की खान हैं हम। औरों की तो नहीं, अपनी जानता हूं, अपने लिये ठोक बजा कर कहता हूं, परमात्मा ! संसार का कोई ऐसा जुर्म नहीं, अपराध नहीं, पाप नहीं, जो मैंने नहीं किया। फिर भी तेरी महिमा है परमात्मा ! जो तू स्वीकार करता है। कैसे भूलें हम तुझे ? कैसे तेरे उपकारों को भूलें ? कैसे भूले तेरी महानता को, दया को, तेरी कृपा को, तेरी क्षमा को ? परमात्मा ! मुझ जैसा कोई और भी बैठा है तो, उसे भी स्वीकार कर लेना। बाकी सब को आपने स्वीकार कर लिया है। कोई मेरे जैसा निकम्मा, नलायक हो उसे भी अपनी चरण शरण देना, उससे अपना नाम जपवाना, उसके दुःख दूर करना, उसे भी सद्गुणों से सम्पन्न कर देना।

हे राम ! शराब का नशा, तो थोड़ी देर के बाद उतर जाता है, लेकिन ये मान का, धन का, **superiority** का नशा परमात्मा ! इतनी असानी से नहीं उतरता और नशे में आदमी लड़खड़ाता है। कभी इधर गिरता, कभी उधर गिरता है। हमारे लिये पाप करने का कारण यही है। परमात्मा ! यह नशा जिसे 'अभिमान' कहते हैं, तेरे आगे झुकने नहीं देता, न तेरों के आगे झुकने देता है। हम पुरुष हैं, हम पति हैं, ये सब कुछ भूलने नहीं देता यह नशा। यदि ये न उतरे तो हे राम ! इस जीवन में नम्रता कैसे आयेगी ? उतार परमात्मा, हमारे सिर से ये नशे उतार। तेरे आगे झोली फैला कर बैठें हैं हम सब। हमारी झोलियां भर दे। हे ईश्वर ! ये अभिमान, यश मान इनको चकनाचूर कर दे। परमात्मा ! तेरे अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता। ये अभिमान टूटे, तो झुकना सीख सकेंगे। तेरे आगे भी और जो तेरे हैं, उनके आगे भी। यह अभिमान है परमात्मा ! जिसके कारण हमें बारम्बार क्रोध का **(attack)** दौरा, **tension** का दौरा पड़ता है। यही दौरे हैं, जो हमें दिल का दौरे के लिये तैयार करते हैं। किस बात का नशा है? परमात्मा ! सब कुछ तेरा है मेरा कुछ भी नहीं, यह बात हमारी समझ में आ जाये तो तेरी कृपा से ये नशा भी उतर जाये। कोई सद्‌गुण अपना नहीं, कुछ भी दिया है वह सब अपना नहीं, सब कुछ तेरा है।

"मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सब तोर,
तेरा तुझ को सौंपते क्या लागत है मोर ।"

मेरे परमात्मा ! ये सब कुछ तेरा है। तू ही, सब कुछ करवाने वाला है। तू ही, सब कुछ करने वाला है। इसी सत्य

का बोध हम सब को करवा। बहुत कुछ मांग लिया है परमात्मा ! पर और किस से मांगे ? और कौन है देने वाला? परमात्मा ! कृपा कर, हमारे ऊपर दया कर। हमारे ऊपर, हे सांई ! दया कर, कृपा कर। दाता शिरोमणि ! दया कर हमारे ऊपर। हम नलायक, बेशक तुझे भूलते रहें, पर तू न हमें कभी भूलना। मेरे राम ! इससे बड़ा दुर्भाग्य का दिन, इससे बड़ा दुर्दशा का दिन कोई नहीं, जिस दिन तू हमें भूल जायेगा।

मेरे परमात्मा ! देख, तेरे बच्चे तेरे दरबार में हाथ जोड़े, झोलियां फैलाये, तेरे आगे भीख मांगते हैं। हम जैसे भी हैं, परमात्मा ! स्वीकार करते हैं, आज से हम और किसी के नहीं, संसार हमारा नहीं है। हम संसार के नहीं। हम तेरे हैं, तू हमारा है। बख्श, हमें परमात्मा, बख्श हमें। हम जैसे भी हैं स्वीकार करना। हमें भूलना न मेरे राम !

कभी न भूलना मेरी मां ! हे जगजननी ! हे जगदीश्वरी! हे परमेश्वरी ! हे सर्वेश्वरी ! हे हृदयेश्वरी ! मैं तो हूं कपूत! पर माता कुमाता कभी नहीं सुनी। तू कभी नहीं भूलना। इसी लिये भीख मांगते हैं तेरे दरबार में, अपने सीने से लगा कर रखना, अपनी गोद में बिठा कर रखना। सब कुछ तेरा है। तूने सब कुछ करवाया है। सब तेरी चरण शरण में समर्पित है। परमेश्वर ! कोई भूल चूक हो गई हो इतने दिनों में, हम भूलनहार हैं, तुझ बख्शनहार से क्षमा करवाते हैं। क्षमा करो परमात्मा ! कृपा करो, कृपा करो, कृपा करो मेरे राम।

भगवन्नाम – जप के सुसंस्कार

स्वामी डा. विश्वामित्र

(गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित "कल्याण" जनवरी 2006)

जो व्यक्ति स्वेच्छा से व अन्य की प्ररेणा से, हाथ से, पांव से, मन तथा वाणी से इष्टानिष्ट क्रिया करता है, इसे कर्ता कहा जाता है। जिन साधनों से कर्ता कर्म करता है, वे करण कहाते हैं –यदि बाहरी हैं तो उन्हें बाह्य–करण और यदि भीतरी तो उन्हें अन्तःकरण कहा जाता है। कर्ता अपने करणों द्वारा जो शुभाशुभ क्रियाएं करता है, उन्हें कर्म कहा जाता है। मनुष्य जैसे कर्म करता है, उसके मन पर उन कर्मों का सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है जिन्हें संस्कार कहा जाता है। शुभ कर्मों के शुभ संस्कार चित्त पर अंकित हो जाते हैं और अशुभ कर्मों के संस्कार भी अशुभ ही होते हैं। यही संस्कार ही समय पाकर अगामी कर्मों के प्रेरक एवं कर्म–फल का कारण बन जाया करते हैं। जैसे चलचित्र की फिल्म में जो रुप रंग, आकार, जो दृश्य, जो स्वर गीत, वाणी–वचन और जो नाद–वादन भरा गया हो अंकित किया हुआ हो, उसी प्रकार जिन भावों से जो कर्म किये जाते हैं, वैसे ही उन के कर्म प्रकट हुआ करते हैं। अपने किये कर्मों का दायित्व कर्ता पर ही है। प्रत्येक कर्ता में क्रिया करने की स्वतन्त्रता विद्यमान है। आत्म–हत्या केवल मानव ही कर सकता है, अन्य योनियां नहीं कर सकतीं। मनुष्य सत्कर्म–दुष्कर्म, बेईमानी–ईमानदारी करने व झूठ–सच बोलने में पूर्णतया स्वतन्त्र है। विधाता ने तिजारी सौंप चाबी अपने पास नहीं मनुष्य को ही दे दी है। अतः कर्म कैसा करना है, ऐसे निर्णय

की स्वतन्त्रता व्यक्ति को है। किया हुआ कर्म फल दिये बिना रह नहीं सकता। यह सिद्धान्त अटल है – शुभ कर्म का फल शुभ और अशुभ कर्म का फल अशुभ है।

कुछ घटित जीवन्त दृष्टान्तों से यह प्रमाणित होता है कि राम–नाम जप द्वारा व्यक्ति सुसंस्कृत हो कर अपने माथे के कुलेखों को भी बदल लेता है अर्थात कुससंस्कारी भगवन्नाम जप के शुभ–दिव्य संस्कारों द्वारा निन्दनीय न रह कर वन्दनीय बन जाता है। उसके विचारों, उसके आचरण एवं स्वभाव में उल्लेखनीय परिवर्तन प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है।

एक बार सम्राट अकबर एवं बीरबल ने मार्ग में किसी ब्राह्मण को भीख मांगते देखा। राजा ने व्यंगात्मक संबोधन द्वारा मंत्री महोदय को पूछा," यह क्या है ?" बीरबल तीव्र बुद्धि वाले तत्काल उत्तर दिया," महाराज ! भूला हुआ है ?" " तो इस पंडित को रास्ते पर लाओ" राजा ने तत्क्षण कहा। "आ जायेगा, राजन ! समय लगेगा। कृपया तीन माह की अवधि दीजियेगा।" शाम को बीरबल ब्राह्मण के घर पहुंचे, विद्वान हो कर भीख मांगने का कारण पूछा और कहा, " ब्राह्मण देवता ! कल से प्रातः चार बजे जागें और मेरे लिये दो घंटे राम नाम जपा करें। शाम को निर्वाह हेतु एक स्वर्ण मुद्रा आप के घर पहुंचा दी जायेगी।" पिछले जन्म के, कुल के संस्कार थे, चार बजे उठने में जप करने में कोई कठिनाई नहीं। मुद्रायें एकत्रित धनवान हो गये। अभ्यास करते करते राम नाम के दिव्य संस्कारों ने दबे सुसंस्कारों को उभारा। यदि बीरबल के लिए जपने से राम–नाम ने धनाढय बना दिया है तो स्वयं के लिए भी क्यूं न जपूं ? चार

घंटे रोज जप होने लगा। मकान बन गया, परिवार सुखी, हर सुविधा से सम्पन्न हो गया। नाम मीठा लगने लगा, कामनायें शून्य होने लगीं। अतः बीरबल से निवेदन किया,"अब जाप केवल अपने लिये करुंगा, आप कृपा करके स्वर्ण–मुद्रा न भेजें।" राम–नाम की अराधना ने विवेक वैराग्य जागृत कर दिया, प्रभु भक्ति की लगन लग गई।

ब्राह्मण देवता ने अवसर पाकर पत्नी से कहा, "देवि! ईश्वर कृपा से घर में सब कुछ है, प्रचुर है, जीवनयापन निर्विघ्न निभ सकता है, आप अनुमति दें तो मैं उद्यान में एकान्त में जप–साधना करना चाहता हूं।" पत्नी ने सहर्ष स्वीकृति दी। ब्राह्मण सतत रामनामोपासना से राम–रंग में रंगे गये, फूल खिल गया, चेहरा नूरी हो गया। लोग दर्शनानार्थ पधारने लगे, शान्ति का अनुभव करते, मनोकामनायें बिन चर्चा पूरी होती। सूचना राजा तक भी पहुंची, बीरबल सहित इस पहुंचे हुए महात्मा के दर्शन करने पधारे। संत उच्च स्थान पर विराजमान हैं, राजा–प्रजा सब नीचे बिछी चटाई पर आसीन हैं। मनोमोहक शान्त मुख को अपलक निहार रहे हैं अकबर। अद्भुत शान्ति लाभ हुई। जाते समय कहा, " महात्मन ! मैं भारत का बादशाह अकबर आपसे प्रर्थाना करता हूं, यदि आपको किसी भी पदार्थ सामग्री की आवश्यकता हो तो निःसंकोच संदेश भिजवाईयेगा, तत्काल आप की सेवा में पहुंच जायेगी।" ब्राह्मण मुस्कराये कहा, " राजन! तेरे पास ऐसा कुछ नहीं जिस की मुझे जरुरत हो, हां यदि तुझे कुछ चाहिये तो मांग लो। जो मुझ से मिलेगा, यहां से मिलगा, वह किसी अन्य से कहीं नहीं मिलेगा।"

भक्ति किसी संत, भक्त एवं आप्त पुरुष से ही मिलती है। बीरबल ने पूछा राजन,''आप ने पहचाना इन्हें, यह वही ब्राह्मण हैं, जो तीन माह पूर्व भीख मांग रहा था।'' राम नाम जप ने भिखारी को सच्चा दाता बना दिया, वास्तविक धन का धनी। राम–नाम के सुस्संस्कारों के प्रताप ने लोक परलोक दोनों सुधार दिये। आपने कहा था इसे सुधारो'' तो मैंने पहले स्वर्ण मुद्रिका का प्रलोभन देकर इनसे राम नाम का जाप करवाया और जब इन्हें राम के नाम में रस आने लगा तो इन्होंने स्वर्ण मुद्रा लेना बन्द कर दिया और भगवत्प्रेम के वशीभूत हो जप करने लगे और आज इनका नाम–जप का संस्कार दृढ़ हो गया है। यह सुन कर अकबर को बड़ा आश्चर्य हुआ।

सुसंस्कारों का संचय, कुसंस्कारों के प्रभाव को दबा देता है, मंद कर देता है और कालान्तर में नष्ट भी कर देता है। इस संदर्भ में एक दृष्टांत यहा दिया जा रहा है।

किसी राज दरबार में एक कर्मचारी की पत्नी महारानी की निजी दासी थी। दोनों में अति घनिष्ट सम्बन्ध, पूर्ण अपनापन, दासी इतनी विश्वसनीय, कि रानी कभी उससे कुछ न छिपाती और दासी भी गुह्यतम बातें भी रानी को निर्भयतापूर्वक बतला देती। कुछ दिन से दासी उदास है। पति ने एकदा राजकुमारी को देखा, मुग्ध हो गया, अपनी औकात को भूल कामना–पूर्ति की तीव्र–इच्छा के कारण दुःखी रहता है। पतिव्रता पत्नी पति के दुःख के कारण उदास रहती है। रानी को लगा कुछ छिपा रही है। आज उदासी का कारण पूछा। बारबार पूछने पर सब कुछ बतला

दिया आशा थी दोनों को नौकरी छुट्टी ही नहीं, कड़ा दण्ड भी मिलेगा, किन्तु भक्तिमयी रानी अति बुद्धिमान, सोच विचार कर कहा,'' तू घबरा मत, मैं कन्या देने को तैयार हूं, पर एक शर्त है। नगर की बाह्य सीमा पर हमारा जो बगीचा है, पति उसमें रहे, हर समय राम राम जपे, जो भेजूं वह खाये, छः माह बाद कन्या का हाथ उसके हाथ में दे दूंगी।'' राजकुमारी पाने के लिए कुछ भी करने को तैयार ने राम राम जपना शुरु कर किया। महल से सात्विक भोजन, दूध, फल निरन्तर जाता। भक्ति में आनन्द आने लगा, नाम जितना जपे, उतना अधिक मधुर लगें अविराम नाम जप से मन–बुद्धि में कुसंस्कारों की धूल धुल गई। दुर्विचार–सद्विचारों में बदल गये। व्यक्ति सन्त–स्वभाव का हो गया, मन पवित्र हो गया। छःमाह पूरे हुए महारानी कन्या सहित पधारीं। दोनों के चरणों पर मस्तक रखा, कहा,''महारानी जी ! इस देवि का विवाह किसी राजकुमार के साथ करें, राम–नाम ने मेरी कुदृष्टि बदल दी और मातृ–भाव जगा दिया। नाम–जप के दिव्य–शुभ संस्कारों ने मेरे वासनामय संस्कारों को दग्ध कर दिया। आप मुझे क्षमा करें, आपने मेरी आंखें खोल दीं। राम से अधिक चमत्कारी है राम का नाम।

सांसारिक सुख पाने के अमिट संस्कार हमारे चित्त में संचित होते रहते है और अक्षय–सुख प्राप्ति की चाह ही उत्पन्न नहीं होने देते। व्यक्ति विषयानन्द में ही आजीवन निमग्न रहता है और भजनानन्द, आत्मानन्द, वास्तविक परम सुख से वंचित रह जाता है। भौतिक सुख रुपी दलदल में फंसे रहना हमारी दुर्बलता बन जाती है। जब प्रलोभन सामने, प्रस्तुत होता है हम झपट पड़ते हैं और निरन्तर और

दुर्बल होते होते पतन को प्राप्त हो जाते हैं। भगवन्नाम के संस्कार हमारे उक्त वर्णित संस्कारों को अभिभूत करके हमें प्रलोभनों के प्रति आर्कषण से बचाते हैं। एक बार का बचाव हमें बलिष्ठ बनाता है और बार बार का बचाव हमें फिर कभी प्रलोभनों में फंसने नहीं देता। इस प्रकार कुसंस्कारों का विध्वंस हो जाता है। साधक उन्हें पुर्नजीवित होने का अवसर न दे।

पावन राम नाम के संस्कार भी पावन, जो भीतरी अपवित्रता को उन्मूल करके उपासक को पावन बना देते हैं और पवित्र, ईमानदार जीवन व्यतीत करने के लिए अढिग रहने का बल देते हैं।

करैसी नोटों का कागज़ होशंगाबाद में बनता है, किन्तु अधिकांश तो विदेश से ही आता है जिसकी जांच यहां होती है। एक राम–नाम के उपासक कागज़ के परीक्षण–अधिकारी के पद पर नियुक्त थे। उनका निर्णय अन्तिम निर्णय होता। एक पूरे **lot** में निरीक्षण पर कमी पाई गई, अस्तु साधक ने उसे पास न (स्वीकार) न किया। उच्चतर अधिकारियों ने समझाया, "झंझट में न पड़ो, जैसा है वैसा ही पास कर दो।" साधक न माना। विदेशी अधिकारियों ने दबाव भी डाला एवं लालच भी दिया, किन्तु साधक पर राम–नाम जप के शुभ संस्कार प्रभावी थे, वह न भयभीत ही हुआ और न ही प्रलोभन में न फंसा। फलतः पूरा लॉट **(lot reject)** अस्वीकार हो गया। कार्यालय से लौट कर साधक ने अपने पिता श्री से चर्चा की, पिता ने कहा,"इतने बड़े बड़े अफसर एवं हमदर्द कह रहे थे तो उनका कहना

मान लेना था''। साधक ने निवेदन किया, ''नहीं पिता श्री ! राम–नाम के उपासक में गल्त को गल्त कहने का साहस न हो, ईमरानदारी पर अडिग रहने का बल न हो, तो किसमें होगा ? सामान्य व्यक्ति तो बेईमानी के कुसंस्कारों से प्रेरित होता है, परन्तु उपासक तो परम शुचिता के संस्कारों से सम्पन्न कभी सन्मार्ग से च्युत नहीं होता। राम–नाम ईमानदारी सिखाता है, अतः साधक न स्वयं और न ही किसी के कहने पर गल्त काम करता है। सुदृढ़ता के लिए बल देता है राम। इसी के भरोसे जो सही था, राम–नाम लेकर कर दिया। आगे की राम जाने।'' साधक की सच्चाई के कारण, उसे बीस अधिकारियों का अतिक्रमण **(supercede)** करके पदोन्नति मिली, वेतन में वृद्धि मिली और कई अन्य पुरस्कार भी मिले। इस प्रकार सच्चाई एवं ईमानदारी के सुसंस्कारों का फल लोक एवं परलोक दोनों में मिलता है। साथ ही साथ राम नाम के दिव्य संस्कार जापक को दिव्य बना देते हैं और उसे दिव्यता वितरित करने योग्य भी बना देते हैं।

प्रभु का नामावतार

स्वामी डा. विश्वामित्र

(गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित ''कल्याण जनवरी 2007)

सतयुग में नृसिंह भगवान का अवतार हुआ था, त्रेता में भगवान रामचन्द्र जी अवतरित हुए, द्वापर में भगवान कृष्ण मुरार का अवतार हुआ और कलियुग में नाम–भगवान का अवतार है। वास्तव में नामावतार तो पुरातन, सनातन एवं शाश्वत है। यह तो सभी युगों में हुए अवतारों के साथ भी विद्यमान था। श्रीनृसिंह भगवान, मर्यादा पुरुषोतम श्रीरामचन्द्र, भगवान श्रीकृष्ण अपनी अपनी लीला संपूर्ण करके अपने अपने लोकों में लौट गये, परन्तु नाम–भगवान तो अभी भी विराजमान हैं। सतयुग में ध्यान की प्रधानता थी, त्रेता यज्ञ–प्रधान था और द्वापर पूजा–प्रधान था। किन्तु अन्य युगों में जो गति पूजा, यज्ञ तथा योग के द्वारा प्राप्त होती, वही गति इस युग में भगवान के नाम से हो जाती है। काकभुशुण्डि जी ऐसी घोषणा करते हैं :

'कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग।।''

(रा.च.मा. 7 / 149)

करुणावरुणालय भगवान ने अपने भक्तों के कल्याण की भावना से प्रेरित एवं द्रवित होकर ''नामावतार'' द्वारा अपनी कृपा–शक्ति को प्रकाशित किया है। जिन जिन हेतुओं के लिए परब्रह्म परमात्मा साकार रुप में अवतरित हुए,

राम राम

वही हेतु इस युग में 'नामावतार' द्वारा भी सम्पादित किये जा रहे हैं। उदाहरणतया तुलसीदास जी कहते हैं–

"राम नाम नर केसरी, कनक कसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रह्लाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल।।"

(रा.च.मा. 1/33)

अर्थात – भगवान श्रीराम का नाम साक्षात् नृसिंह भगवान है। कलिकाल मूर्तिमान हिरण्यकशिपु है और राम–नाम का जप करने वाला जापक प्रह्लाद है। जिस प्रकार सत्युग में हिरण्यकशिपु के अत्याचारों से संत्रस्त प्रह्लाद के संकट का निवारण नृसिंह के रुप में प्रकट होकर भगवान करते हैं, उसी प्रकार आज भी कलियुग में नाम–भगवान द्वारा हमारी समस्याओं, हमारे संकटों से हमें छुटकारा मिलता है। प्रह्लाद को राक्षस पिता द्वारा यातनायें दी जाती हैं, उन्हें अग्नि में जलाया जाता है, सर्प से डंसाया जाता है, पर्वत से गिराया जाता है तथा भूख से सताया जाता है। विचार करके देखें तो साधक के साथ भी यही कुछ होता है। चाहे वह बाहर का सांप न हो, बाहर का पहाड़ न हो तथा बाहर की आग न हो। पर क्या ईर्ष्या, द्वेष व क्रोधाग्नि से साधक संत्रस्त नहीं होता ? क्या चिन्ता की आग में सभी लोग नहीं जल रहे ?

"चिन्ता की लगी आगि है, जरे सकल संसार।
पलटू बचते संत, जिन लिया नाम आधार।।"

दुर्गुणों के सांप साधक को डंसने को तैयार रहते हैं। विषयों का विष उतरता ही नहीं। चिन्ता की अग्नि सदैव जलाती रहती है। अहंकार का पर्वत गिराने के लिए सर्वदा तत्पर रहता है।

राम राम

अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित के राज्य काल की घटना है। राजा परीक्षित को मालूम हुआ कि उनके राज्य में कलियुग का प्रवेश हो गया है, तो वे सेना लेकर दिग्विजय के लिए निकल पड़े। एक स्थान पर उन्होंने देखा कि धर्म बैल का रुप धारण करके एक पैर से घूम रहा है। एक स्थान पर उन्हें गाय रुपी पृथ्वी मिली, उसके नत्रों से आंसु झर रहे थे। धर्म ने पृथ्वी से पूछा–''तुम दुःखी क्यों हो ?'' पृथ्वी ने बताया–धर्म ! भगवान् श्री कृष्ण ने इस समय इस लोक से अपनी लीला का संवरण कर लिया है और यह संसार पापमयी कलियुग की कुदृष्टि का शिकार हो गया है, यही देख कर मुझे बड़ा शोक हो रहा है। कालान्तर में पांडव–पुत्र राजा परीक्षित ने धर्म के प्रतीक एक बैल को एक पांव पर खड़े देखा, जिसे एक शूद्र पीट रहा था। पूछा,''अरे दुष्ट ! इसे क्यों पीट रहे हो ?'' व्यक्ति ने उत्तर दिया,''राजन ! मैं कलि हूं, अपना काम कर रहा हूं।'' राजा ने क्रुद्ध होकर कहा,''मैं तुम्हें यहां नहीं रहने दूंगा।'' राजन! पहले मेरे गुण–दोष तो सुन लो, तब निर्णय लेना। मेरे युग में धन–सम्पति हेतु भाई–भाई लड़ेंगे। लज्जावान, मर्यादा में रहने वाली नारी कोई कोई होगी। गाय बकरे का मांस खुले आम मिलेगा। मानव अल्पायु व अल्प–बुद्धि होगा। जुआ, शराब, स्वर्ण व वेश्या–गृह में मेरा अधिक व विशेष निवास होगा। मदिरापान की अति होगी। लोग सदा किसी न किसी नशे में चूर रहेंगे।'' कलि की घोषणा सुन राजा तिलमिला कर बोले,''बस बस हद हो गई, तुम्हारे प्रभाव से तो मानवता ही लोप हो जायेगी–अतः तुम्हें मार डालूंगा।''

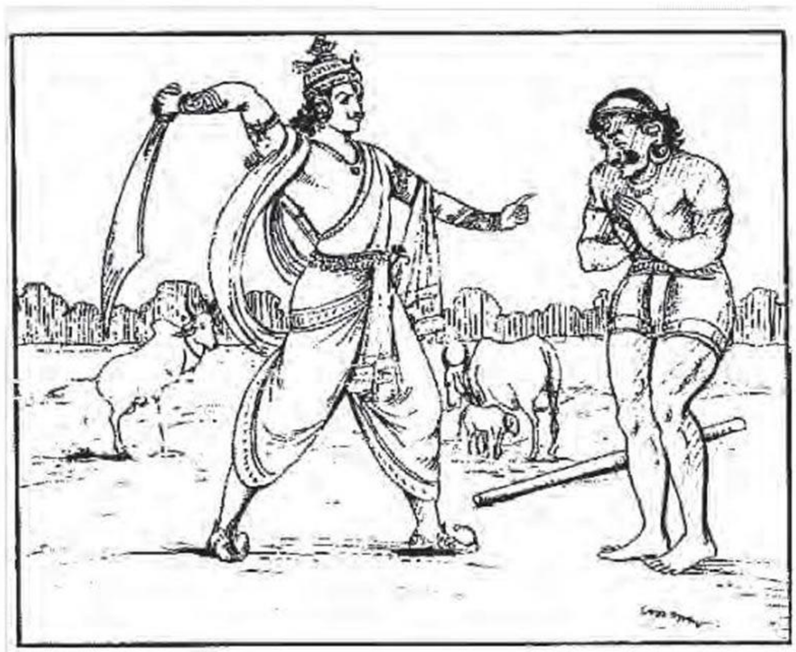

कलि ने आगे कहा,"महाराज! एक बड़ा भारी गुण भी है, सुन लें, सतयुग में दीर्घकालीन जप, तप, उपवास, व्रत, ध्यानादि करने से जितना पुण्य, त्रेता—में बड़े बड़े यज्ञों के करने से, द्वापर में भगत्सेवा—पूजा से जितना पुण्य मिलता, उतना पुण्य मेरे काल में प्रेमपूर्वक राम—नाम के जपने से मिलेगा।" इसी बात को श्री शुकदेव जी परीक्षित को बताते हैं कि राजन! यों तो कलियुग दोषों का खजाना है, परन्तु इसमें एक बहुत बड़ा गुण है। वह गुण यही है कि कलियुग में केवल भगवान का नाम—संकीर्तन करने मात्र से सारी आसक्तियां छूट जाती हैं और परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंग परं व्रजेत्।।

(श्रीमद्भागवत् 12/3/51)

तात्पर्य यह है कि कलियुग में भगवान् नामावतार

के रुप में जीवों का कल्याण करते हैं। अतः जो साधक भगवन्नाम का आश्रय लेते हैं, उनकी रक्षा के लिए अन्ततोगत्वा एक दिन भगवान अपनी पूर्ण–शक्ति के साथ प्रकट या अप्रकट रुप में हिरण्यकशिपु रुपी कलियुग का संहार अवश्य करते हैं। इस प्रकार साधक की साधना सफल होती है।

कलियुग की बुराईयों द्वारा प्रस्तुत विघ्न–बाधाओं के मधय में नामोपासना का होना, यह भगवान की कृपा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। जीवन्त उदाहरणें हैं–गोस्वामी तुलसीदास एवं भक्त शिरोमणि सूरदास जी की। ये जन्मते ही संत–भक्त नहीं थे। नाम की आराधना की, भगवान ने कृपा करके उनके दुर्विचारों, दुर्गुणों, दुष्वृत्तियों एवं उनकी दुर्बलताओं को दूर करके, चित्त का शुद्धिकरण करके, उन्हें वन्दनीय बना दिया और उनकी रचनाओं को अमर। नामोपासना भक्ति–प्रधान है। भक्ति का मार्ग उनका है जिनके पास अपना बल नहीं है। इस पथ का पथिक यदि किसी भी प्रकार अपने बल का स्वयं अनुभव करे अथवा उसे अपने पुरुषार्थ का तनिक भी अभिमान हो, तो वह भक्ति–मार्ग का सच्चा यात्री नहीं, उसके परम बल तो परमात्मा हैं। भक्त का निर्बलत्व ही उसका बल है जो भगवान को आकर्षित करता है। यह मार्ग उनका, जो अपने अहं का हनन कर चुके है। वे जानते हैं–

" नाम मान, मन एक में, एक समय न समाय।
तेज तम तो एक स्थल, कहीं न देखा जाये।।"

(भक्ति प्रकाश)

संत कनकदास को जो कोई भी पूछता,"क्या मैं स्वर्ग जाऊंगा ?" "नहीं, जब मैं जायेगा तो तू जायेगा" संत उत्तर

देते। किसी को उतर देते,''हां–जब मैं जायेगा तो तू जायेगा।'' पूछने वाले इन वचनों को अहंकारी के वचन समझते। अतः पूछा,''क्या आप स्वर्ग जाओगे ?'' ''हां ! जब मैं जायेगा तो मैं जाऊंगा''। अब सही समझ आई कि सन्त किस 'मैं' की बात समझा रहे हैं। मान को उल्टा करें तो नाम बनता है। ये दोनों एक साथ नहीं रह सकते–अतः नाम मान को, अहं को मारने की अचूक दवा है। 'नाम' उसे कहते हैं जो 'नम' कर दे अर्थात झुका दे। नाम एक ओर जीव को झुकना सिखा देता है, दूसरी ओर भगवान को झुका देता है। दोनों के झुकने पर जीवात्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता है। नाम श्रीनामावतार को भी झुका देता है। प्रभु से प्रेम जन्म–जन्मान्तरों का मोह मिटा देता है। श्रीराम को हर समय अंगसंग मानने का अर्थात दिव्य–प्रेम में हर समय डुबकी लगाये रखने का एवं राम–कृपा को सर्वदा याद रखने का सामर्थ्य प्रदान करता है नाम–भगवान। ऐसा जापक झुकने की, विनम्र रहने की कला सीखकर परमात्मा के परम–प्रेम का पात्र बन जाता है तथा प्रत्येक परिस्थिति को प्रभु–प्रसाद मान कर सम रहता है।

एक संत के पास ब्राह्मण वेश में कलियुग पधारे, परिचय दिया तथा आदेश दिया,''सत्संग में आत्मा–परमात्मा की चर्चा व रामनामोपासना पर बल मत दिया करें। इससे लोगों का मनोबल, बुद्ध–बल बढ़ता है, विश्वास में वृद्धि होती है। तब उन पर मेरी दाल नहीं गलती, वे मेरे प्रभाव से बाहर हो जाते हैं।'' संत ने विनयपूर्वक कहा,''भाई ! भीड़ें इकट्ठी करना मेरा उद्देश्य नहीं, लोगों में भक्तिभाव जगे, उन्हें

सत्स्वरुप का बोध हो, यही सत्संग का लक्ष्य है।'' कलियुग ने कहा,''इस समय मेरा शासन है, जिसका राज्य हो उसके पक्ष में रहना बुद्धिमता है।'' ''भाई! मैं तेरे राज्य में नहीं, राम–राज्य में हूं, मेरे राजा राम हैं तू नहीं, युग तो आते जाते रहते हैं।'' ''आपको मेरी अवज्ञा मंहगी पड़ेगी।'' धमकी देकर कलि चला गया। अगले ही दिन एक व्यक्ति आये, कहा,''महाराज ! आपने शराब मंगवाई थी उस के पैसे अभी तक नहीं पहुंचे।'' संत समझ गये, कलि का खेल है। सत्संगी जो समर्पित थे, निन्दक हो गये, आश्रम खाली हो गया। संत मस्त–अति वाह–वाह देखी थी, अब बदनामी देखते हैं। कलि प्रकट हुए–पूछा,''कैसा है आश्रम ? कैसी है भक्ति ? सुना है भगवान मानने वाले शैतान मानने लगे हैं। पुनः कहूंगा मेरे राज्य में नामोपासना सिखा कर मेरे विरुद्ध न चलो। यदि मान जायें तो कल से ही दुगने भक्त पधारने लगेंगे।'' ''कैसे ?'' संत ने पूछा। ''कल ही दिखा दूंगा,''कलि ने कहा। एक कोढ़ी मार्ग में पड़ा था,''अरे कोई मुझे संत के पास ले जाओ, यदि वह कृपा करके मुझ पर पानी छिड़केगा तो कोढ़ दूर हो जायेगा। ऐसा भगवान ने स्वपन में बताया है।'' लोग कहें,''नहीं – वह तो शराबी है, संत नहीं।'' ''अरे नहीं, वह उच्च कोटि का महात्मा है।'' संत ने जल छिड़का, कोढ़ ठीक, वृद्ध से सुन्दर युवक हो गया। सत्संगी, शर्मिन्दा, क्षमा मांगी। सत्संग में खूब भीड़ हो गयी। कलि फिर पधारे, कहा,''देख लिया मेरा प्रताप, अतएव मुझ से मिलकर रहो''। संत ने तत्काल कहा,''नहीं, हम तो प्रभु राम से ही मिल कर रहेंगे, सत्संग जारी रहेगा ताकि लोग विषय–दास, धन–मन

के दास न बनें, राम–दास बनें।'' कलि ने धमकाया,''आपको भारी पड़ेगा, देख लिया न मेरा प्रभाव।'' ''हां देख लिया, निन्दा–स्तुति दोनों करवा ली, क्या तूने भी देख लिया राम–राज्य का प्रभाव ? मैं दोनों में सम।'' प्रत्येक परिस्थिति में अप्रभावित अर्थात सम व शान्त रहना है, प्रभु की भव्य अनुकूलता का प्रताप। नाम–भक्ति भगवान को भक्त के अनुकूल बना देती है और समता है परमोच्च अवस्था जो राम–कृपा से भक्त को उपलब्ध होती है।

उपनिषद् सब सारों का सार भगवन्नाम को घोषित करता है और नाम–भगवान की उपासना को परमोपासना। वाचिक, उपांशु तथा मानसिक, ये तीनों प्रकार की उपासना सर्वसुखकारी, मंगल एवं कल्याणकारी है। यद्यपि चारों युगों में नाम का प्रभाव प्रत्यक्ष है, परन्तु कलियुग में तो इसका विशेष महत्व कहा गया है। अनादि काल से इसे सर्वोच्च स्थान दिया जा रहा है। इस साधना को कल्पतरु अर्थात समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली एवं सकल भव–व्याधियों को दूर करने वाली बताया गया है। हिन्दु, मुस्लिम, सिख, ईसाई एवं यहूदी सभी किसी न किसी रुप में नामोपासना का महत्व स्वीकार करते हैं। इसके मुख्य अंग हैं: नाम–स्मरण,ध्यान व कीर्तन।

1. **नाम–सिमरन** : परमेश्वर के पतित–पावन नाम को वाणी अथवा मन से जपना सिमरन (सुमिरन) कहा गया है। नाम–उच्चारण करते करते, उसके गुणों का स्मरण, प्रीतिपूर्वक अथवा भाव–सहित जप सिमरण कहाता है। संत सिमरन की महिमा गाते हुए अघाते नहीं–

" सिमरन में सब सुख बसें, सिमरन में हरि आप।
वहां नामी निवास है, जहां नाम का जाप। "

(भक्ति–प्रकाश)

परमात्मा को सर्वत्र, सर्वदा अपने अंगसंग अनुभव कर, उससे मन ही मन वार्तालाप करते रहना मधुर स्मरण–योग वर्णन किया जाता है –

" स्मरण योग कहा सुगम, कठिन अन्य हैं योग।
हरि दर्शन हरि धाम दे, सिमरन हरता रोग।।"

(भक्ति–प्रकाश)

राम–नाम जपने का सबको समान अधिकार है, चाहे निपट निरक्षर है या साक्षर, निर्धन है या धनवान, उच्च जाति का है या निम्न का, महिला है या पुरुष, पवित्र है या अपवित्र, पापी है या पुण्यात्मा, मांसाहारी है या निरामिष एवं दुःखी है या सुखी। इसे जेल में, शौचालय में, श्मशान–भूमि में, खेत, अस्पताल अर्थात प्रत्येक स्थान में जपा जा सकता है। हर समय जपा जा सकता है। नाम–भगवान नरेश हैं, जापक के चौकीदार बनकर उसकी पवित्रता, उसके सद्‌गुणों की रक्षा करते हैं, दुर्गुणों से बचा कर रखते हैं। नाम की गूंज, मोर की गूंज अथवा गरुड़ की गूंज का कार्य करती है।

" काया चन्दन तरु कहा, लिपटे अवगुण नाग।"
नाम गरुड़ की गूंज सुन, जावें सब ही भाग।"

(भक्ति–प्रकाश)

" राम राम धुन गूंज से, भव भय जाते भाग।"

(अमृतवाणी)

पशु पक्षी को भी नाम–पुकारने से प्रभु का संरक्षण मिला है।

'नाहन गुनु नाहन कछु विद्या, धर्म कौन गज कीना। नानक विरद राम का देखो, अभय दान तिहि दीना।''

''राम'' परब्रह्म परमात्मा का सर्वाधिक प्रिय मधुरत्तम नाम भी है तथा द्वि–अक्षर मंत्र भी है। इस शब्द के उच्चारण से दोनों नाम एवं मंत्र जप का फल मिलता है। एकदा धर्मराज युधिष्ठिर ने पितामह से पूछा,''मंत्र जप करने वाले को कौन लोक प्राप्त होता है ?'' भीष्म एक दृष्टांत के माध्यम से उत्तर देते हैं – हिमालय के निकट एक तपस्वी ब्राह्मण ने अनेक वर्षों तक राम–नाम जपा। प्रभु प्रकट हुए कहा,''ब्रह्म ऋर्षि ! मैं तुम से प्रसन्न हूं, वर मांगो।'' ''हे प्रभो! और अधिक मंत्र–जप की इच्छा में निरन्तर वृद्धि हो तथा मन की एकाग्रता में बराबर उन्नति हो।'' ''तथास्तु ! अब तुम प्रेमपूर्वक नाम जपो।'' वर्षों जप किया। मन, इन्द्रियों पर पूरा वशीकरण हुआ। काम, क्रोध, लोभ, मोह पर विजय प्राप्त की, दूसरों के दोष कभी न देखते। अब धर्मराज पधरे–कहा,''महाराज ! मैं आपके दर्शन करने आया हूं। नाम–मंत्र जाप के फलस्वरुप आप देव–लोक को लांघ जहां आपकी इच्छा हो, ऊपर के लोकों में प्रवेश पा सकते हैं।'' ऐसी है राम–नाम एवं मंत्र–आराधना की महिमा।

नाम–भगवान ने किस निन्दनीय को वन्दनीय नहीं बना दिया ? यह तो अनधिकारी को राम–कृपा का पुण्य पात्र बना देता है। एक राजा, एवं उसके राज्य अधिकारियों के चरणों का दास, राम–दास बनने के लिए हिमालय की गोद में

साधनारत हो गया। राम–नाम की दीक्षा देते समय गुरु जी ने समझाया था,"वत्स ! राम–मंत्र चलते–फिरते, सैर करते, उठते–बैठते, खाते–पीते, खेलते–कूदते, नहाते–धोते, काम–काज करते, सोते–जगते, श्वास लेते–छोड़ते तथा यात्रा करते हर समय जपा जा सकता है, हर जगह जपा जा सकता है। भोजन बनाते, लकड़ी काटते भी राम राम जपते रहना।" लटक लग गई, अविराम नाम जपा। एकान्त था समय का सदुपयोग किया। गप–शप, निन्दा–चुगली, झूठ, छल–कपट सब छूट गया। युवक नाम–रंग में रंगा गया। नाम–भगवान ने कृपा की, मन का पवित्रीकरण हुआ, आचरण–व्यवहार सुधरा, स्वभाव बदला। भूख–नींद बहुत कम हो गई, राम–मिलन की तड़प जगी। चित्त शान्त हुआ, परम–शान्ति एवं परमानन्द का अनुभव हुआ। चेहरे पर अद्भुत नूर प्रकट हुआ। प्रभु ने लोक–संग्रह के लिए अपना यन्त्र बनाकर संसार में भेजा। पुष्प खिला था, उसके सौन्दर्य एवं उसकी महक से सबको सुख मिले, अतः प्रीति–भोज का आयोजन किया। धनवानों ने, राजा सहित आर्थिक सहायता की। नाम की महिमा समझाई, भजन–कीर्तन हुआ। विदा लेते समय सबने संत को प्रणाम किया। राजा भी पहुंचे–कहा,"महात्मन! कोई चमत्कार नहीं दिखाया।" संत ने मुस्करा के विनयपूर्वक उत्तर दिया,"राजन ! चमत्कार तो हो गया। मैं वही आपका सेवक जो कुछ वर्ष पूर्व आपको ही नहीं आपके अधिकारियों को भी प्रणाम किया करता था, आज आप सहित सब उसे दण्डवत प्रणाम कर रहे हो। इससे बड़ा चमत्कार और क्या हो सकता है ?" कितनी सुगमता से नाम–भगवान रीझ कर अपनी महिमा को चमत्कारी ढंग से भक्त में प्रकट कर देते हैं।

2. नाम–ध्यान : ध्यानपूर्वक नाम जाप चाहे वाचिक ही हो, आत्म–शक्ति को जगा देता है। यदि मानसिक हो अथवा सांस के साथ जपा जाये तथा प्रीतिपूर्वक नाम की ध्वनि पर मन एकाग्र किया जाये तो शब्द–ब्रह्म (अजपा जाप) व नाद–ब्रह्म (अनाहत नाद) आप ही आप प्रकट हो जाते हैं। नाम–ध्यान मन की सारी मैल धेने, कुसंस्कारों को जलाने तथा आत्म–स्वरुप जान जाने का एक सहज एवं उत्कृष्ट साध्न है। अनन्त के मिलाप का यह परम उपाय है।

"सब साधन का सार है, सब योगों का सार।
सर्व कर्म का सार है, नाम ध्यान सुखकार।।"

(भक्ति–प्रकाश)

जीवन के दिव्यीकरण का अर्थात श्रीराम के सद्‌गुणों को अपने भीतर खींचने का अति शक्तिशाली साधन है नाम ध्यान।

"राम नाम धुन ध्यान से सब शुभ जाते जाग"

(अमृतवाणी)

3. नाम–संकीर्तन : काम वासना (कामिनी), कंचन और कीर्ति मनुष्य को कुपुरुष बना देते हैं, इन की चिकित्सा होती है चौथे ककार से अर्थात कीर्तन से। सभी प्रकार के कीर्तनों में नाम कीर्तन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। नाम संकीर्तन के विषय में कहा गया है – "यह पाप रुपी पर्वतों को चूर्ण–विचूर्ण करने में बज्र के समान है, सुख–दुःख, मान–अपमान आदि द्वन्द्वों के उभाड़ को दूर करने वाली सिद्धौषधि है और अज्ञानरुपी रात्रि के प्रगाढ़ अंधकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के उदय के समान है।" अतिशय सुन्दर भक्तिभावपूर्ण स्तोत्रों, भजन–गीतों द्वारा तन्मय होकर

राम राम

प्रभु चरणों में अपने आपको समर्पित करना संकीर्तन का सदृश्य स्वरुप है। श्रीराम ऐसे स्थान पर, जहां उनके भक्त एकत्र होकर, प्रभु का गुणगान करते हैं, स्वयं विराजमान रहते हैं। जिस कीर्तन में रोमांच हो जाये, प्रेमाश्रु बहने लगें तथा आवेश आ जाये, ऐसा कीर्तन सारे तन को, मन को, स्नायु को और सारे मज्जाजाल को प्रभावित कर देता है। आत्मा को इससे सहज ही शान्ति प्राप्त हो जाती है। संतों ने सत्य ही कहा है कि संगीत सहित नाम का आराधन अति सुगम है और भगवत्प्रेम प्राप्ति का सर्वोच्च उपाय है। जिस प्रकार ताली बजाने पर पेड़ पर बैठे पक्षी उड़ जाते हैं उसी प्रकार संकीर्तन में ताली बजाने से पाप–पंछी भी उड़ जाते हैं। श्री राम–गुण–गान की महिमा वर्णन करते हुए तुलसीदास जी कहते हैं,

"कलियुग केवल हरिगुन गाहा।
गावत, नर पावहिं भव थाहा।।
कलियुग जोग न जग्य न ग्याना,
एक आधर राम गुन गाहा।।"

(रा.च.मा. 7/149/2–3)

वे आगे फरमाते हैं – राम जी की अपेक्षा जिसे राम–नाम अधिक प्रिय है, उसका इस घोर कलियुग में कल्याण निश्चित है। किसी के पूछने पर गोस्वामी जी नामोपासना की विधि बताते हैं –

" राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।

(विनय पत्रिका)

मन की तीन दशा होती हैं। कभी शान्त होता है, कभी

राम राम

राम राम

दुःखी और कभी मन सुखी होता है। तुलसीदास जी सुझाते हैं,"जब मन शान्त हो तो राम राम ऐसे जपो कि ध्यानस्थ हो जाओ। यदि मन दुःखी हो तो राम राम रटो—'रट मेरी रसना, राम राम राम', बीमारी अथवा संकट में मन नहीं लगता, तो भी राम राम जपते रहें। जब मन आनन्दित हो तो राम—राम से खेलो।" तुलसी समझाते हैं जब हम वाद्य—यन्त्रों तथा संगीत के साथ संकीर्तन करते हैं, ताली बजती है, हाथ उठते हैं तथा नृत्य होता है, यही नाम—भगवान से खेलना है, रमना है। अतएव तुलसी भी नामावतार की उपासना के उक्त—वर्णित तीन ही अंग वर्णन करते व स्वीकारते हैं। स्वामी सत्यानन्द जी दृढ़तापूर्वक एवं विश्वासपूर्वक आश्वस्त करते हैं:

"तारक मंत्र राम है, जिसका सुपफल अपार।
इस मंत्र के जाप से, निश्चय बने निस्तार।।"

(अमृतवाणी)

गुरु नानक भी ऐसी ही वाणी बोलते हैं :

" कहु नानक सोई नर सुखिया, राम नाम गुण गावै।
और सकल जग माया मोहिया, निर्भय पद नहिं पावै।"

एकदा किसी सज्जन ने स्वामी अखण्डानन्द जी से पूछा— " महाराज ! कोई ऐसा साधन बतावें जो सरल, संक्षिप्त, सामग्री—विहीन, सबको सुलभ हो और शीघ्र फलित होने वाला हो।"

महाराज जी बोले—"भगवन्नामोपासना।"

दूसरे ने पूछा—"विषय—वासना कैसे दूर हो"?

महाराज जी ने कहा —

"राम नाम जब सुमिरन लागा।

कहे कबीर विषय सब भागा।।"

इतिहास साक्षी है –

"राम–नाम ने वे भी तारे,
जो थे अधर्मी अधम हत्यारे।
कपटी–कुटिल–कुकर्मी अनेक,
तर गये राम–नाम ले एक।।
तर गये धृति–धरणा हीन,
धर्म–कर्म में जन अति दीन।
राम–राम श्रीराम–जप जाप,
हुए अतुल विमल अपाप।।"

(अमृतवाणी)

अन्य अवतार तो किसी एक या कुछेक के लिए, गिनित प्रयोजन सिद्ध करने हेतु अवतरित हुए, परन्तु नामावतार तो सबके लिए, सर्वप्रयोजन संपूर्ण करने के लिए सर्वत्र,सर्वदा अवतरित है। ऐसे श्रीनामभगवान् को बारम्बार प्रणाम है।

वास्तविक गुरु–दक्षिणा

स्वामी डा. विश्वामित्र

(गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित ''कल्याण सितम्बर 2011)

जगद्‌गुरु तो सगुण निराकार जगदीश्वर ही हैं। अनेक सत्‌गुरुओं के रुप में जन्मे, उन्हीं एक के विभिन्न स्वरुप हैं। परमगुरु परमात्मा उनके माध्यम से शिष्यों को नाम–दान दिलवाते हैं, गुरुमन्त्र की दीक्षा दिलवाते हैं, उन्हें अपने से भी बड़ा स्थान दिलवाते हैं। उन्हीं के मुखारविन्द से यह उद्‌घोष है–''मोतें संत अधिक करि लेखा।'' (रा.च.मा. 3/35/2) अर्थात संतों को मुझसे भी अधिक करके मानना। क्यों ? नाम–दान शिष्यों को स्वयं न देकर, शरीरधारी गुरुओं से दिलवाते हैं और शिष्यगण दीक्षा लेकर, गुरुओं को उपहार देते हैं, जिसे गुरु–दक्षिणा कहा जाता है। ये सामग्री प्रायः धन, वस्त्र, खाद्य–पदार्थों अथवा अन्य दैनिक प्रयोग की वस्तुओं के रुप में होती है। सच्चे सद्‌गुरु–संत व परमगुरु परमात्मा को शिष्यों से कैसी दक्षिणा अपेक्षित है, कुछेक दृष्टान्तों के माध्यम से उसी का उल्लेख प्रस्तुत है :–

1. विद्याध्ययन समाप्त होने पर श्रीकृष्ण ने गुरु सांदीपनि के चरणों में प्रार्थना कीः ''गुरुदेव ! आज्ञा करें, श्रीचरणों में क्या गुरुदक्षिणा दूं ? क्या सेवा करुं?'' गुरुदेव बोले :''मुझे तो कुछ नहीं चाहिए, कोई आवश्यकता नहीं।'' ''गुरुदेव ! आपको कोई आवश्यकता नहीं, लेकिन मुझे तो गुरु–दक्षिणा देकर सेवा करने की आवश्यकता है''। ''अच्छा ! तो अपनी मां से पूछ, उसे क्या चाहिए?'' श्रीकृष्ण ने गुरु–पत्नी से

पूछा''आपकी क्या सेवा करुं?'' ''कृष्ण! तू हमारा सबसे समर्थ विद्यार्थी है। मेरा बेटा यमलोक चला गया है, मुझे वह ला दे''। श्रीकृष्ण ने नियति की मर्यादा को तोड़कर यमपुरी से गुरु–पुत्र को लाकर मां की गोद में रख दिया। कितना महत्व है गुरु–दक्षिणा का, गुरु–शिष्य सम्बन्ध में। इसकी पूर्णता के लिए शिष्य को नाम–दान, गुरुमन्त्र या विद्या–प्राप्ति के बाद गुरु को किसी न किसी रुप में गुरुदक्षिणा का देना अनिवार्य है।

2. महात्मा शुकदेव मां के गर्भ में ही आत्म–ज्ञानी, 14 कला संपूर्ण, बाहर निकलने से इन्कार करें, कहें–''मैं माया से अलिप्त रहना चाहता हूं''। भगवानश्री ने माया की गति को पांच पल के लिए रोका, तब शुक गर्भ से बाहर निकले। वैराग्य इतना प्रबल, जन्मते ही जंगल में। जब कभी विष्णुपुरी जाना चाहते, भीतर प्रवेश न मिलता, धक्के मिलते, शुक निगुरा है तथा ज्ञान का अभिमानी है। अतएव पिता, महर्षि व्यासदेव जी ने पुत्र को राजा जनक के पास भेजा। मन में संशयजन्य कई प्रश्न–वह राजा मैं ऋषि, वह गृहस्थ मैं त्यागी, वह क्षत्रिय मैं ब्राह्मण, वह भोगी मैं योगी–संन्यासी, मैं ऐसे राजा जनक को गुरु कैसे बनाऊं? अनेक बार गये परन्तु वापस लौट आते। कमाई वाले संत–महात्मा की निंदा से, उनमें दोष–दर्शन से अपनी कमाई लुटती है। शुक 14 कला से दो कला सम्पन्न रह गए। देवर्षि नारद इन्हें शिक्षा–देने हेतु, एक वृद्ध का रुप धारण करके, एक पानी के नाले में मिट्टी डाल रहे थे। बहते जल में मिटट्टी ठहरे न। शुक ने उधर देख पूछा–''क्या कर रहे हो'' ? वृद्ध ने उत्तर

दिया–''बांध बना रहा हूं।'' ''मूर्ख कहीं का–क्या बांध ऐसे मिटट्ी फैंकने से ही निर्मित हो जाता है''? वृद्ध ने तत्काल मुंह घुमाकर कहा–''मूर्ख मैं नहीं, मूर्ख तो वह शुकदेव, उसकी मूर्खता देखो, अभिमानवश उसने अपनी बारह कला व्यर्थ खो दीं''। शुक एकदा तो सुनते ही बेहोश हो गए, होश आया, उठे और सीधे राजा जनक के पास पहुंचे।

''श्रद्धा सुभक्ति प्रेम से, आया जनक समीप।
जो था आत्म जगत में,धर्म पोत का द्वीप।।

द्वारपाल द्वारा कहला भेजा–

''राजन !शुक आया यहां, लिए प्रेम की प्यास।
दर्शन दो करके दया, तारो बेड़ा पार।''
अवस्था यौवन जानकर, दी आज्ञा मिथिलेश।
डयोढ़ी पर ही ठहरिए, तीन रात तक शेष।।
सुन आज्ञा शुकदेव ने, किया पालन तत्काल।
खड़ा रहा त्रिदिवस तक, पड़ी न त्यौड़ी भाल''।।
(भक्ति–प्रकाश)

इसी प्रकार अन्तःपुर में तीन–दिवस–रात तक और ठहरने को कहला भेजा, वहां भी शीतकाल में, उपवास रखे हुए शुक रुके रहे। वहां नारियों का स्वछन्द आना–जाना भी बना रहा, पर शुक तो भक्ति–लगन में मग्न, मस्त रहे। अब नृप ने पधारने का कारण पूछा ?

''हाथ जोड़कर जनक को, बोला शुक मुनिराज।
आत्म–ज्ञान सुभक्ति पथ, मुझे दीजिए आज''।।
(भक्ति–प्रकाश)

सद्गुरु महाराजा जनक ने शुकदेव को अधिकारी

जानकर, पुण्य–पात्र मानकर हरि–नाम की दीक्षा दी। कुछ दिन श्रीगुरुचरणों में बैठ कर साधना की, सब संशय दूर हुए। शिष्य ने गुरुदेव को गुरु–दक्षिणा देनी चाही। "वत्स ! मुझे कुछ नहीं चाहिए।" आग्रह करने पर, तथा गुरु–दक्षिणा की अनिवार्यता स्पष्ट करने के लिए, राजा जनक ने कहा" तुम्हारी दृष्टि में जो निरुपयोगी है, वह मुझे दे दो।" शिष्य ने सोच विचार कर मिट्टी उठाई। तत्काल बोली–"मैं नदियों, सागर, पर्वतों को, महलों–मकानों को देह दान देती हूं। प्रत्येक प्राणी को अन्न, फूल, फल, ईंधन देती हूं। मैं व्यर्थ कैसे"? उसे फेंक पत्थर उठाया वह बोला–"मुझ से मकान, महल, किलों का निर्माण होता है, मैं व्यर्थ नहीं।" शुकदेव जी का माथा ठनका–देहाभिमान ही दोषी है, निरुपयोगी है, इसी से संसार में बन्धन है। अतः प्रत्येक शिष्य को अपना कर्तृत्व अर्थात कर्तापन का अभिमान, अपना अहं ही श्रीगुरुचरणों में गुरु–दक्षिणा के रुप में चढ़ाना चाहिए। गुरुदेव सद्शिष्य से मांगते भी यही हैं।

3. संत तुकाराम अपने शब्दों में अपने बारे में रहस्यपूर्ण बातें बतलाते हैं–"कथावार्ता सुनते सुनते मेरी प्रीति प्रभु से हो गई। मैं विठ्ठल भगवान् का उपासक बन गया, उनके नाम का सतत् जाप करने लगा। प्रभु को मुझ पर दया आई, स्वप्न में सद्गुरु मिले। मैं गंगा–स्नान करके लौट रहा था, रास्ते में मिलन हुआ। कहा–"मैं भगवान् विठ्ठलनाथ की प्रेरणा से आपको उपदेश देने आया हूं।" मैंने कहा–"मैंने तो प्रभु की कोई सेवा नहीं की, कितने दयालु हैं वे। राम–कृष्ण–हरि मंत्र दिया और गुरु दक्षिणा में पाव–भर तूप(घी) मांगा।

तुकाराम स्पष्ट करते हैं—तूप का वास्तविक अर्थ है—मैं—मेरापन अर्थात अहंता—ममता, घी नहीं। समझाया—तू न पुरुष है न स्त्री, तू तो आत्मा है, उस अंशी अविनाशी का अंश। देह के सारे भाव मुझे अर्पण कर दे अर्थात अपनी अहंता(अपना अहं) मुझे दे दे''।

4. गुरु नानक देव भ्रमण करते करते, एक नगर में पहुंचे। वहां के राजा दर्शनार्थ पधारे, अति प्रभावित हुए। अतः कुछ भेंट करने की उत्कट—इच्छा व्यक्त करते कहा—''बाबा ! मैं कुछ देना चाहता हूं।'' ''राजन ! जो तेरा अपना हो सो दे दो।'' सोना, चांदी, हीरे, जवाहरात सब आगे रख दिए, कृपया स्वीकार करें। ''ये सब तो आपके नहीं, तेरे से पूर्व पिता के, उनसे पहले दादा के और तेरे बाद तेरे पुत्र के हो जाएंगे। तेरे मरणोपरान्त यहीं छूट जाएंगे, तो तेरे कैसे हुए? तेरा शरीर भी यहीं छूट जाएगा, यह भी तेरा नहीं। मन भी तेरा नहीं, क्यों? तू तो यहां बैठा है और मन कहीं और घूम रहा है। अपनी वस्तु पर तो नियन्त्रण होता है, मन तो दिन रात भटकता है। तू तो भजन—पाठ के लिए बैठा है, अर्थात शरीर तो सत्संगति में बैठा, पर मन मार्किट में, या घर परिवार के साथ। राजन ! बुद्धि भी तेरी नहीं, तेरी हो तो सदा सही निर्णय ले। उसमें तो अज्ञान भरा पड़ा है, तभी तो सत् को असत् और दुःखदायी वस्तु को सुखदायी बताती है। यही माया है।'' ''बाबा ! फिर आप ही बताओ—क्या दूं''? ''राजन ! जब राजा जनक के सामने भी ऐसी ही समस्या थी—महर्षि याज्ञवल्कय से उपदेश की प्रार्थना की थी, जिससे मन—बुद्धि वश में रहें—

"हाथ जोड़ विनती की भारी,
ज्ञान दान दो, हूं अधिकारी।
ऋषि बोला—राजन बड़भागी, वैरागी तू ही है त्यागी।
ध्यान यजन अब आप रचाओ, दक्षिणा देकर चित्त टिकाओ।"

राजा ने गुरु—दक्षिणा देते हुए प्रार्थना की—"महर्षि ! सारा राज्य ले लें।" "ये तो तेरा नहीं, पूर्वजों का था और तेरे पास भी नहीं रहेगा। ऐसी वस्तु दो जो तेरी हो।" "कृपया धन ले लें।" "वो भी तेरा नहीं राजन ! बहुधा भाग पिता का, शेष प्रजा का। तेरा कैसे? घोड़े, हाथी, गाड़ियां भी आपके नहीं, आज आपके पास, कल दूसरे के पास। राजन! तेरा तो तन भी नहीं, मुर्दा हो यहीं छूट जाता है। मन की दक्षिणा दो।" गुरु नानक इसे अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं—"यह जो कह रहे हो—मैं धन देता हूं, राज्य, तन, मन, बुद्धि देता हूं, ये सब अपने पास रखें, मुझे "मैं" दे दें। यदि दे दिया, तो सब कुछ मिल गया और यदि "मैं" नहीं दिया, तो सब कुछ देने पर भी कुछ नहीं दिया"। महर्षि याज्ञवल्कय राजा जनक से उनका मन मांगते हैं तो

"शुभ भक्ति में जनक जी बोले,
मेरे मन मुनिवर का हो ले।
ऋषि बोला आशीष हो मेरा,
स्वीकृत किया दान ही तेरा।"
आत्मज्ञान हुआ अब जानो,
सफल यजन राजन यह मानो।
वह बोला—सुन गुरुवर प्यारे, उड़े वासना पंख पसारे।
न स्थिरता मन में है आई, चंचलता की है अधिकाई।

मुनि बोला– है दान अधूरा, इससे टिका न मन तव पूरा।

दिया दान मन अब न डुलाओ,
मेरा मन न काम में लाओ।
मन अपना मानो अब मेरा,
राज काज करिए बहुतेरा।
मौन मूर्ति स्थिर ही हो के,
शान्त हुआ संशय सब खो के।
निश्चल मन अडोल थी काया,
मिटी सकल ही मन की माया।

(भक्तिप्रकाश पृ. 285–286)

ऋषि ने आशीर्वाद देते कहा–"हे राजन ! आपका मन प्रसाद रुप में लौटाता हूं, इसे अपना न मान, मेरा मानते हुए राज्य भी करें और श्री राम–भजन भी। राजा जनक विदेह हो गए।

5. तिब्बत की सच्ची घटना–एक शिष्य गुरुदेव के पास पहुंचे, दीक्षा की याचना की। कहा–"यहां सैंकड़ों शिष्य, आपके लिए स्थान रिक्त नहीं"। "गुरुदेव ! कृपा करें, मैं कहीं भी इधर–उधर पड़ा रहूंगा।" "अच्छा, तू सबके भोजन हेतु चावल कूटा कर"। शिष्य ने गुरु–आज्ञा शिरोधार्य कर दिन–रात यही काम किया। न शिष्य कभी गुरु के पास गया और न ही गुरु कभी शिष्य के पास पधारे। अनेक वर्ष बीत गए, गुरु–देव के निर्वाण का समय आ गया। गुरुपद प्रदान करना चाहते अतः शिष्यों से कहा–"जो वर्षों यहां शिक्षा ग्रहण की, उसका सार लिख कर दें।" लगभग सभी

ने यही लिखा—"मन एक दर्पण है, गुरु उस पर जमी धूल को साफ कर देते हैं।" गुरु अप्रसन्न एवं असन्तुष्ट। अतः कहा—"उस चावल कूटने वाले को भी एकदा पूछ लो"। सब गए, पूछने पर उत्तर दिया—"बन्धुओ ! मैं अनपढ़, लिख नहीं सकता, परन्तु आप सबने क्या लिखा"? जो अधिकांश ने लिखा था, बतला दिया। तब कहा— "भाईयो ! जब गुरु मिल गया, तो मन अपने पास कहां रहा ? गुरु तो मन के लुटेरे हैं, हम तो उनका मन प्रयोग करते हैं अर्थात सब कुछ के लिए सद्गुरु जिम्मेदार"। सुन कर प्रथम व अन्तिम बार गुरु महाराज शिष्य के पास पधारे, गुरु पद प्रदान किया और स्वयं निर्वाण को प्राप्त हो गए।

उक्त वर्णित दृष्टान्तों से गुरु दक्षिणा की अनिवार्यता सिद्ध हो जाती है। गुरु—दक्षिणा भेंट करके शास्त्रीय पद्धति के अनुसार गुरु—शिष्य सम्बन्ध सुपुष्ट हो जाता है। शिष्यों के श्रीगुरुचरणों में गुरु—दक्षिणा के रुप में देहाभिमान की भेंट या अहं की भेंट अथवा मन को सैद्धान्तिक रुप से समर्पित कर दिया किन्तु, इन सब का क्रियात्मक रुप क्या होगा ?

1. महात्मा बुद्ध ने एकदा कहा—"भिक्षुओ ! आज से चार माह बाद परि—निर्वाण हो जाऊंगा, यह शरीर तब आपके मध्य में नहीं रहेगा, अतः जो करने योग्य है, उसे शीघ्र करो, देरी के लिए अब समय नहीं।" सकल संघ महा—विषाद में डूब गया, रोते, धोते, छाती पीटते, बिलखते, गहरी सोच में डूब गए—अब क्या होगा? सभी चिन्ताग्रस्त थे कि व्यवस्था कैसे चलेगी? तिष्य नामक शिष्य खबर सुनने

के बाद न रोये, न चिल्लाये, मौन हो गए। साथी सोचें, इसे इतना गहरा सदमा (धक्का) कि इसने बोलना तक बन्द कर दिया। भय, कि कहीं पागल न हो जाए। तिष्य अपने सद्व्यवहार के कारण, सर्वाधिक प्रिय, चुप्पी की सूचना गुरुदेव के पास पहुंची कि तिष्य ने कछुए की भान्ति अपने आपको भीतर समेट लिया है। बुलाया शिष्य को, श्रीचरणों में मस्तक नवाया। बुद्ध ने कहा–"वत्स ! ये भिक्षु तुम्हारी भाव–दशा, मनः स्थिति के बारे में जानना चाहते हैं।" तिष्य ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया–"प्रभु ! आप जी के आदेश–"जो करने योग्य है, करो, देर मत करो," मैं उसीके यथासम्भव पालन की कोशिश कर रहा हूं। कृपा करें, मेरा संकल्प पूरा हो।" अश्रु पूरित आंखें, तिष्य ने विनयपूर्वक निवेदन किया–"मेरे प्रभु ! हे करुणावान गुरुदेव ! निर्वाण से पूर्व मेरी "मैं" की मृत्यु हो जाए, इसके लिए बल भी दें तथा आशीर्वाद भी। अब न बोलूंगा, न हिलूंगा तथा न ही डोलूंगा। मुझे सारी शक्ति इसी पर लगानी है। हे दयालु ! कृपा करो, ताकि यह चार माह, जीवन की क्रान्ति के लिए लगा दूं, इस पार या उस पार हो जाऊं"। शिष्य की बातें सुन, प्रसन्नचित्त गुरु ने कहा–"हे भिक्षुओ ! तिष्य समान बनो। रोने, बिलखने से क्या होगा, पुष्प–माला से पूजा मेरी पूजा नहीं, जो कोई ध्यान के फूल रोज़ चढ़ाता है, वह असली पूजा करता है। अपने जीवन को साधनामय बनाना, दिव्य बनाना है मेरी वास्तविक पूजा। जो तिष्य को हुआ, वही तुम अपने में होने दो।"

गुरु आज्ञा, उनके आदेशों, उनकी शिक्षाओं का, परम्पराओं का अक्षरशः पालन, पवित्र जीवन–यापन के लिए

दृढ़ संकल्प होना, भगवन्नाम की कमाई अर्जित करना, सत्कर्मों की पूंजी अर्जित एवं संचित करना तथा सब प्राणियों में नारायण देख व गुरुसेवा की भान्ति उनकी सेवा करना, उनसे प्रेम–पूर्ण व्यवहार करना, स्वाध्याय करते रहना, तथा गुरु उपदेशों के प्रचार–प्रसार द्वारा उन्हें सत्संग के लिए प्रेरित करना, साधना के लिए प्रोत्साहित करना है वास्तविक गुरु पूजा। ऐसी पूजा रुपी सुमन समर्पित करते रहने के लिए अर्थात उक्त–वचनों के पालन के लिए वचन–बद्ध रहना है वास्तविक गुरु–दक्षिणा।

2. गंगा तट पर एक ऋषि का आश्रम, जहां अनेक शिष्य आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण करते। शिक्षा पूरी होने पर अपने अपने घर वापस चले जाते। जाते समय आचार्य से पूछते–"गुरुदेव ! गुरु दक्षिणा में क्या दें"? गुरु फरमाते–"तुमने जो पाया है, समाज में जाकर, उस पर अमल करना, विद्या को आचरण में लाना, अपने पैरों पर खडे होवो, सच्ची–सुच्ची कमाई करो और फिर एक साल बाद तुम्हारा जो दिल चाहे, वह दे जाना।" शिष्य आश्रम छोड़ अपने अपने काम–काज से जो कमाई होती, उसमें से श्रद्धापूर्वक कुछ भाग निकाल गुरु महाराज को दे जाते। एकदा गुरुकुल में एक सीधा–सादा शिष्य आया, साधारण गृहस्थ था, दिन भर मेहनत करके अपने परिवार का पालन–पोषण करता। सीखने की तीव्र–इच्छा थी, अपने सद्व्यवहार से सबका दिल जीत लिया। ऋषि उसे स्नेहपूर्वक पढ़ाते, जो सीखता, उस पर मन से अमल करता, जो काम दिया जाता उसे अगले दिन पूरा करके लाता। जब शिक्षा पूरी हुई, तो उसने भी पूछा–"गुरुदेव!

दक्षिणा में क्या दूं?" ऋषि ने उसे भी वही कहा जो अन्य शिष्यों से कहते। एक वर्ष बाद लौटा, चरणवन्दना की और श्रद्धा से बोला–"गुरुदेव ! गुरु दक्षिणा देने आया हूं।" उसे देख गुरु प्रसन्न पूछा–" बेटा! क्या लेकर आए हो"? दस लोगों को खड़ा कर दिया जो उसके गांव के थे। कहा–"गुरुदक्षिणा में इन्हें लाया हूं।" "किस लिए"? " प्रभु जो शिक्षा आपने मुझे दी थी, उसे इन तक पहुंचाया, उतने से ही इनका जीवन संवर–सुधर गया, अब आप इन्हें अपना शिष्य बना लें ताकि इतने लोग और सन्मार्ग पर चल सकें।" हर्षित ऋषि ने कहा–"तुमने मुझे सर्वश्रेष्ठ गुरुदक्षिणा दी है। बेटा ! तूने यहां से पाया भी सर्वश्रेष्ठ, बांटा भी सर्वश्रेष्ठ और मुझे भेंट भी सर्वश्रेष्ठ ही किया।"

सत्संग में पधारने का आशय भी यही कि संत–दर्शन से कामनाएं पूर्ण होंगी। नाम–दीक्षा भी इसी उम्मीद से लेते हैं कि हमारी भौतिक समस्याओं का समाधान होगा। कुछ समय नाम भी जपते हैं, तरह तरह की पूजा भी करते हैं, एक से निराश हो दूसरे का भी वरण करते हैं। आज वृंदावन, कल ऋषिकेश, परसों बालाजी भगवान के चरणों में हाज़री भरते हैं। जीवन भटकन में ही व्यतीत हो जाता है। ऐसों के लिए ही भक्त कबीर साहब फरमाते हैं–

"दुनिया देखो मस्त दीवानी, भक्ति भाव न बूझै जी।
कोई आवे तो बेटा मांगे, भेंट रुपया दीजै जी।
कोई आवे तो दुःख का मारा, हम पर कृपा कीजै जी।
कोई रचावे ब्याह–सगाईयां, संत गोसाईयां रीझै जी।
सच्चे को कोई ग्राहक नाही, झूठे जगत पसीजै जी।

कहे कबीर सुनो भई साधो, इन अन्धों का क्या दीजै जी।''

स्वामी सत्यानन्द जी जैसे सच्चे सन्त संसारियों की ऐसी मनोदशा देख फरमाते हैं–''भाई ! हमारी हालत तो ऐसी, जैसी अंधे ग्राहकों बीच दर्पण बेचने वाले दुकानदार की।'' ऐसों को न आध्यात्मिक गुरु के महत्व का बोध, न ही गुरु–दक्षिणा का। वे शिष्य तो गुरु एवं परमात्मा के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करते हैं जैसे आपस में व्यापारी। संत भगवन्नाम जपने, भक्ति करने के लिए प्रेरणा देते हैं, मोक्ष–प्राप्ति के लिए साधना करो, मार्ग दर्शाते हैं, परन्तु कोई मानने व करने को तैयार नहीं। आशीर्वाद मांगते हैं, जाप–ध्यान, सेवा–सुमिरन नहीं करते।

संतों का अनुभव यही दर्शाता है, शिष्य बनना अति दुष्कर है। कोई विरला आध्यात्मिक जीवन में गुरु–स्थान को जानता है, कोई ही उसके सामर्थ्य को पहचानता है, किसी को ही बोध है–गुरु से क्या पाया जा सकता है, क्या मांगना है तथा क्या उनकी सेवा में अर्पित करना है ? एक युवक जिज्ञासु घूमता घूमता नेपाल के पर्वत की घाटी में पहुंचा, जहां एक वृद्ध सन्त शिला पर बैठे दिखे। ध्यानस्थ थे, प्रतीक्षा की, दण्डवत् प्रणाम किया, परस्पर परिचय हुआ। सूर्य अस्त का समय था, युवक से संत ने कहा–''वत्स ! मेरे पांव में इतना बल नहीं कि स्वयं पहाड़ पर चढ़ कर अपनी गुफा तक पहुंच सकूं। कृपया मेरी सहायता करो, अपने कन्धों पर उठा कर पहुंचाने का कष्ट करो।'' कठिन चढ़ाई, उठा लिया युवक ने, रात्रि 11 बजे पहुंचे। वृद्ध को उतार कर हांफते हुए युवक ने सविनय पूछा–''महात्मन् !कोई और

सेवा'' ? संत अपार हर्षित, महान योगी थे, सिद्धियों के स्वामी थे, अपनी योग–शक्ति से रुपयों के, नोटों के बोरे बनाये और युवक को बोले–''पुरस्कार रुप में जितना उठाना चाहो, उठा लो।'' युवक ने कहा–''हे प्रभु ! ये सब तो मैं छोड़ कर आया हूं, इससे क्या जीवन का रहस्य जान पाऊंगा? क्या मृत्यु जानी जा सकेगी ? महात्मन् ! ये सब तो नश्वर, संतों से भी यदि नश्वर ही मिलेगा, तो शाश्वत कहां से व किससे मिलेगा?'' ''मैं देह हूं'', इस अहंभाव की मृत्यु है वास्तविक मृत्यु, यही है मौत का रहस्य। इसे चाहे श्रीगुरुचरणों में गुरु–दक्षिणा रुप में चढ़ा कर मार डालो अथवा अन्य साधनों से, इसकी मृत्यु के बाद ही शिष्य सच्ची गुरु–सेवा योग्य बन सकेगा अन्यथा संसार की सेवा न करके शिष्य अपने अहं की सेवा में ही जीवन बर्बाद कर देगा। स्वयं मिट जाने वाले गुरुमुख शिष्य, अपने गुरु को कभी मरने नहीं देते, उनके उपदेशों के अनुकरण के तथा उनके प्रचार–प्रसार के माध्यम से उन्हें सदा जीवित रखते हैं। ये शिष्य गुरु महाराज को आजीवन सच्ची गुरु दक्षिणा देते रहते हैं तथा स्वयं भी अमर हो जाते हैं। तभी सन्तों–महात्माओं ने अनुभवी कथन द्वारा सत्य कहा–''जिन राम को अपनाया, अपना आप मिटाया, तिन राम को पाया। जहां अपने आपको मिटाओगे, वहां बनाने वाला ऐसा बना देगा कि सदा बने रहोगे अर्थात कभी न मिटने वाला बना देगा।'' ऐसे सद्गुरु तथा शिष्य दोनों धन्य।